

सन्मति-सन्देश



सम्पादक—

मुनि श्री अरिलेशचन्द्र जी महाराज
मुनि सुरेशचन्द्र, शास्त्री “साहित्यरत्न”



सन्मति शास्त्र पीठ, आगरा

रत्नालोक चैन भोतल

मन्त्री, सम्मति शासन पीठ,
लाहा मन्त्री, आगरा

मूल्य

मन्त्रिद धारद आना

अन्त्रिद आठ आना

मुद्रक

बालकृष्ण बन्सल

बन्सल २५, आगरा

धर्मों और किम लिए ?

ज्ञान विज्ञान के इस युग में हर चाद का बातीकी स विश्लेषण हा रहा है । विश्लेषण और बुद्धिवाद की कभीगी पर जा चीम खरी नहीं उतर पानी उस आनान में भी युग की सनेत्र आँवीं अब आनाकानी करन लगी हैं । धम का तत्त्व भी इस परीक्षणामक प्रान्ति न अछूता नहीं रह पाया ! धर्म का भी आत्र बौद्धिक कमाण पर कभने हुए देखा जाता है कि—“समभाव, समन्वय, अहिंसात्मक उपेक्षा भाद चारे और अर्वावाद का वह कहीं तक समर्पक है ! धरती पर धू धू करक लालभाती हुई वैभ्य तथा रंग भेद की आग को बुझान में वह कहीं तक योग दान द सकता है ? विश्व शान्ति तथा जन उन्नयन का वह कहीं तक पोषक है ?

गन्ननि-महाराज का स देश इस बौद्धिक निरीक्षण परीक्षण का हृदय स सागत करता है, क्वाक बुद्धिवाद और अर्वावाद ही उसके मूलाधार हैं । सय मगवा मंशार स जब पूछा गया कि धर्म-तत्त्व का निर्णय करन के लिए हम कौन-सा मत्र लेकर चनें, ता ७ ही गम्भार मुद्रा में वहा उद्गोर किया था कि—‘धर्म-तत्त्व का विनिश्चय मनुष्य की अरनी प्रज्ञा-शुद्ध बुद्धि ही कली है —

‘पत्रा ममिस्वप्य धर्मं, तत्त तत्त विधिच्छिव ।’

हम पर से यह तथ्य दिनांक उड़ने की तरह साफ है
ना है कि समति-मन्त्रों में मनुष्य का स्वतंत्र चिन्तनिक
। खुला आकाश है ।

इसके अतिरिक्त मंगलान मन्त्रीर क स्वोत्तमैय सदा
मानस्यचतना की समानता सार्वजनीनता और सार्वभौमता
। प्रकाश अन्वेषितियों कर रहा है । यह किमी सम्प्रदाय
। नि या र्ग की प्रोती नहीं प्रसुत मानसमात्र की गन्धि
। उसकी दृष्टि में मनुष्य, मनुष्य है और इन्द्र नहीं । इ
कार कि दा बुद्धिवाद और अर्गवाद का मूनभित्ति पर र्ग
। के क कारण मन्त्रीर का सदेश आब क युग क
। नए विरोध शीत से अनुकूल है ।

अब प्रस्तुत पुस्तक पर 'समति' नान पाठ की और स
नू १९५३ की समति नगरी का प्रकाशन होन लगा तो
। एक सम्पादन क दार्शिक को निम्नान क लिए मुझे सम्पात
। शीर क कुछ नानदायी वचना का चयन करना पना
। बनता न उम चुनी हु* पूजी का गदा ही पनद
क्या । बन-भा की इन पनन्गी न अन्वेषित होकर
। न में विचार आश कि— क्या न इस शानकी अमूर्त्य
। की को थोडा परिकार और वर्गीकरण का र्ग देकर एक

(३)

छोटी-सी पुस्तिका की तिनौरी में सुरक्षित रख लिया जाय !
 बिनासे स्वाध्याय प्रेमी मजनों के लिए एक स्थायी चीज बन
 सक । 'सन्मति-सन्देश' इमीं मन्त्रिचार का मूर्त रूप है ।

आज का मानव पार्थिव एषणाओं और भौतिक रिक्त
 माश्री की मरुभूमि-चिकित्सा के पीछे स्तहाशा दौड़ रहा है !
 उस नहीं पता इस अविश्रान्त दौड़ का लक्ष्य किदु क्या है !
 उस नहीं मालूम मेरी मंजिन क्या है ! वह दौड़ दौड़ कर
 हॉप रहा है, पर फिर भी दौड़े हा जा रहा है !

ऐस लक्ष्य ज्ञान मानव को 'सन्मति-सन्देश' जीवन की
 सच्ची राह का प्रोत्साह द्युआ सन्देश देगा, कुछ देर ठहर कर
 अपनी स्थिति पर सोचने के लिए मजबूर करेगा । और
 समझ में आने वाली भाषा में कहेगा— 'अनन आज को
 पचानो ! जीवन-नक्षत्र को पढ़ो !

यदि अनन नर आनाक स 'सन्मति-सन्देश' जन-मन में
 जैन-वाग्मय के तरोतर म अग्रगाइन करने की योनी भी लावना
 जगा सका, तामें समझूंगा, इस अग्रगण्य का मन मफल हो गया ।

नर वर्ष १ जनरल
 १६/३ आगत

मुद्रा मुनि "साहित्यरत्न"

कहाँ क्या है ?

१—आत्मा	२
२—धर्म	१६
३—अहिंसा	३०
४—सत्य	४२
५—अज्ञान	४८
६—ब्रह्म-सर्व	५५
७—अपारम्य	५८
८—कथाय विषय	६४
९—नृत्त्या	७०
१०—अप्रभाद	७४
११—विषयों का भाग विष !	८२
१२—ब्राह्मण किस कह ?	८२
१३—अशरण भावनः	८८
१४—मान स-मान	१०४
१५—भित्त कौन ?	१०६
१६—वैराग्य	११
१७—रमा	११८
राज	१२०

सूक्तमति महावीर

उपाध्याय श्री अमर मुनि जी

आइए, शरा अपनी स्मृति को पुराने भारत में ले चनें ।
कितने पुराने भारत में ?

यंग करार पचीस शताब्दी पुराने में । 'श्रुत अथ्छा ।'

अने रे यह क्या हो रहा है ! लारों मूक
पशुओं की लारों यह की बाल-बंदी पर तड़प रही हैं । मोले
भाले मानव शिशु और पकी आयु क वृद्ध भी देव बूढ़ा क
वृद्ध में मौत के घाट उतारे जा रहे हैं । शत्रु भी तो मनुष्य
हैं । इह क्यों मनुष्यता क सर्व-सामान्य अधिकारों से भी
बाधित कर दिया गया है ? मातृ-आति का इतना भयङ्कर
अत्याचार, !, साम्राज्यिक-व्य, ग, रें, रात, दिन, की, दसरा, म, सिर,
आम कोई काम ही नहीं ! प्रत्येक नदी-नादा प्रत्येक इट
पथर प्रत्येक भाइ भैंवाइ देवता बना हुआ है । और मूर्ख
मानव-माइ अपने महान् यक्ति-व को भुलाकर इनक आग
दीन भाग से अपना उल्लत मस्तक रगड़ता फिर रहा है ।
आध्यात्मिक और सांस्कृतिक पलन का इतना भयङ्कर दृश्य !

जी हों यह ऐसा ही दृश्य है। आप देव नहीं रहे हैं यह आब स पचीस शताब्दी पुराना भारत है, और ये नर लोग उस पुराने भारत के निवासी हैं। आब भी इनके जीवन की भाँकी पुराण और वदों के पृष्ठों पर अङ्कित है।

क्या हम युग में भारत का कोई उद्धार-कर्ता न हुआ ?
क्या कोई इन धर्मांध लोगों को समझान-बुझान वाला न मिला ?
अथ विश्वाम का इस प्रगाढ़ अधकार पृथ्व काल रात्रि में ज्ञान-सूर्य का उज्ज्वल आलोक फैलाने वाला क्या कोई महापुरुष अवतरित न हुआ ?

अनर्थ हुआ।

कौन ?

स मति महावीर।

धर्म का यह अन्त निरुप है कि अब अध्याचार अधनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है अधर्म धम का जाना पहन कर जाता को अम-बधन में बाँध लेना है तब कोई न कोई महापुरुष समाज राष्ट्र पर विश्व का उद्धार करने के लिए जन्म लेना ही है। भारतवर्ष की तत्कालीन स्थिति का किना महापुरुष के अवतरण की प्रतीक्षा कर रही

थी। अतः भगवान् महाशूर की धामा ने भारत के उदार
 कनिने मगध प्रवेशवर्ती वैशाली नगरी (कुशिनपुर) के
 गङ्गा निदाय्य और रानी तुशला क यहाँ जम प्रहण किया।
 भारत क इतिहास में चैत्र शुक्ल त्रयोदशी का यह पवित्र
 दिन है, जो लाखों वर्षों तक अजर अमर बना रहेगा।
 भगवान् महाशूर के जम दिन बनन का सौभाग्य इन्ही पवित्र
 दिन को प्राप्त हुआ है।

महाशूर राजकुमार थ। सब प्रकार का सामाजिक सुख
 वैभव चारा और शिखर पड़ा था। विवाह हो चुका था।
 अवन समय की अनुपम सुन्दरी राजकुमारी यशोदा धर्म-पत्नी
 क रूप में प्रेम पुजारिणी बनी हुई थी। दुःख क्या होता है ?
 कुछ भी पता न था। यह सब कुछ था। परन्तु महाशूर का
 हृदय फिर भी कुछ अनमना-सा, उदास-सा रहता था।
 भारत का धार्मिक तथा सामाजिक पतन उन्हें जैसा कि
 हुए था। क्रान्ति की चपल ज्वाला अन्दर ही अन्दर धधक
 रही थी। हृदय मग्न चलना रहा। दो वर्ष तक गृहस्था
 जीवन में ही तपस्विवर्ग जैसी उग्र साधना का जि
 चलना था।

। वर्षों की मरी बरानी में

शीर्ष कण्ठ दशमी के दिन मगध का विशाल साम्राज्य-लक्ष्य को टुकरा कर व पूरा अकिंचन भिन्न के रूप में निर्जन वन की ओर चल पड़े ।

प्रश्न हो सकता है कि भगवान् महावीर ने भिक्षु होते ही उद्देश की गांधारा क्यों न बड़ाई ? जत यह है कि महावीर शासक के साधारण सुधारकों जैसी मनोवृत्ति न रखते थे कि जो कुमन में आए, फल पर कद डालो, करो धरने को बुद्ध नहीं उनकी तो बस धारणा था कि 'जब तक नेता अपने जाम को न सुधार ले अपनी दुर्बलताओं पर विचार प्राप्त न ले तब तक यह प्रचार-चौर में कभी भाग्यलता प्राप्त न कर सकता ।' महावीर इस उद्देश्य का पूर्ति के लिए धारणा तक कठोर तप-साधना करते रहे । मानव-समाज प्रायः अन्ततः अन्त जंगलों में परतों की गुफाओं में रहने आया थी अन्ततः प्रकृत आध्यात्मिक शक्तियों को जगाने ही उन दिनों उनका एक-मात्र कार्य था । एक-एक मनुष्य के प्रतीक धर्मों के सामने से गुजरे एक-एक मनुष्य की आपत्तियों ने चारा ओर चकराया परंतु महावीर

जिन घटनाओं के पठन-मात्र सहमारे रींगे सङ्गे हो जाते हैं, वे प्रयत्न रूप में जिन जीवन पर स प्रयत्नित हुई होंगी, वह कितना महान् हाथा ? हमारी कल्पना कुचिन्ता हो जाती है ।

अद्विष्ट और सत्य की पूर्ण साधना के घन स जीवन की समस्त कानिमा धुन उका थी, परिश्रम और स्वच्छता की अविश्व रेखाएँ प्रदुग्नि हो चुकी थीं, आत्मा की अनन्त शान-ज्योति जगना उग था, अत वैशाख शुक्ल दशमा के दिन भगवान् महावीर केवल शान और केवल दर्शन का अन्वय प्रकाश प्राप्त कर तीर्थकर पद के अधिकारी हुए । जैन धर्म की मान्यता के अनुसार कोई भी मनुष्य जन्म से भगवान् नहीं होता । भगवत्पद की प्राप्ति के लिए निरन्तर साधनाओं के पथ पर चलना होता है, जीवन के चारों ओर सत्कार के कंगर नियमों का अभेद्य प्रकार रक्षा करना जाना है तब कहीं मनुष्य भगवत्पद का अधिकारी होता है । भगवान् महावीर का जीवन हमारे समस्त आध्यात्मिक विकास का एक द्युत भङ्गा आदर्श उपस्थित करता है ।

भगवान् महावीर की ज्यों ही केवल-ज्योति के दर्शन हुए, त्यों ही वे अपने एकान्त जीवन को वनों में स खींचकर

मानव-समाज में ले आए। मानव-समाज में आकर अपने मानव-जगत् की अल्पिन मानवता को विकसित करने का प्रयत्न आ-शोकन चालू किया। तत्कालीन धार्मिक तथा सामाजिक भ्रान्त रुढ़ियों के प्रति आत्मन वह सकल आत्ममर्ण किया। एक अधविशवासी के सुन्दर दुःख उह उह कर भूमिस्तात होने लगे। भारत में चारों ओर क्रान्ति का आलामुगी क-पण। धर्म-गुरुओं के दाम्भिकता पर चिन् प्रस्ताप्यत ररर्थ नि-मन हिन उडे। आर का विगध भी उडे और स हुआ। प्राचीनता के पुकारियों ने प्रचलित परम्पराओं की रक्षा के लिए ची ताड़ प्रश्न किए, मन-मान आरत भी किए, परतु महापुरुष आरतिया की बाधाओं से क्या कभा रका करने हैं। य तो आत्म निश्चित पर पर प्रातयन आगे ही आगे चने रहते हैं और अन्त में मफलता के मिह द्वार पर पं-र कर ही विश्राम लेने हैं।

भगवान् महावार के आ-रण नूतक धर्मा-रथ ने भारत को काग पन-र करी। य नूतक गिनिक विधि विधानों में लगे हुए क-व-र दिग्गज विगान् भा भगवान् के चरणा के पत्रार मन गए। इन्द्रभूति गौतम आ आत्मन सम- के एक

दार्शनिक, साथ ही-साथ क्रियाकारी ब्राह्मण माने
 । पात्रापुर में निगलन यज्ञ की आयोजना कर रहे थे ।
 [की पहली टक्कर इन्हीं के साथ हुई । गौतम पर
 एक अनन्त काल प्रकाश एवं अम्बुशुद्ध तस्त्रिक का
 तत्त्व प्रमाण पना, कि वे सदा के लिए यज्ञ-वाद का
 गिरा भगवत्पद कमला में दीक्षा हो गये । हाक
 ही चार हजार स्वार णी (४४००) अथ ब्राह्मण
 न मा भगवान् क वान मुनि-दासा धारण की ।
 एक अहिंसा धन की यह सबसे पहली दिव्य थी,
 भारत की चिर निश्चिन्त अग्नि रोल दी । उक्त घटना
 भगवान् जहाँ भा पधारे, धर्म विरासु जनता समुद्र
 ते भगवान् की ओर उमड़ती चला गई ।

तान् महावीर मानु-व्रति क प्रति भी बड़ उदार
 ज्ञान थे । उनका कहना था कि 'पुरुष क ज्ञान ही
 भी प्रतिक धार्मिक तथा सामाजिक क्षेत्र में बराबर
 कारक है । आ-व्रति को हीन एवं पतित समझना
 त्रि है । अतएव भगवान् न भिन्न-संघ क समान
 ती का भी एक संघ बनाया, जिसकी अधिनत्री

मानव-समाज में ले आए। मानव-समाज में आकर आसने मानव-संगत की नलिन मायता को विकसित करी का प्रयत्न आ-दान-चालू किया। तत्कालीन धार्मिक तथा सामाजिक धान्त रूढ़ियों को प्रति आसन वह सफल आक्रमण किया कि अधविश्रामों को सुन्दर दुग दृष्ट कर भूमिगत होन ला। भारत में चारों ओर प्रान्ति का उगनामुखा कर पना। धर्म-सुन्दरों को दार्मिकता पर चिर प्रतिक्षण रण्य रियन हिन उडे। आर का विरोध भी बड़े जारों से हुआ। प्राचीनता को पुनरिषों में प्रचलित पाण्डुओं की रक्षा के लिए भी ताड़ प्रयत्न किए, मन-मनि आत्मे भी किए, परन्तु महापुरुष आर्चिता की बाधाओं से क्या कभी रका करने हैं। व तो अवन निश्चित ध्ये पर प्रतिवन आग ही आग करने रहते हैं और अन्त में सफलता को सिंह द्वार पर पहुँच कर ही निशाम लेने हैं।

भगवान् महावीर को आ-चरु नूनक धर्मादेश न भागन का कारण बन कर रा। व नूनक रिक रियि रिधाना में लगे हुए बड़े-बड़े दिग्गज पणान् भा भगवान् को -र्या को नन गए। इन्द्रभूत गौतम, जो अवन समय को एक

पुरुष-दार्शनिक, साथ ही-साथ त्रियाकारणी बाह्य माने जाने थे, पायापुर में विशाल मठ की आयोजना कर रहे थे। भगवान् की पहली टक्कर इन्हीं के साथ हुई। गौतम पर भगवान् के अनन्त ज्ञान प्रकाश एवं अमरत्व तपस्तेज का वह दिलचस्प प्रभाव पड़ा, कि वे सदा के लिए यन्त्रवाद का पक्ष त्यागकर भगवत्पद कर्मना में दीक्षित हो गये। इनके साथ ही चार हजार चार सौ (४४००) अन्य ब्राह्मण विद्वानों ने भी भगवान् के पास मुनि-दास्य धारण की। भगवान् के अहिंसा धर्म की यह समस्त पहली विजय थी, जिसने भारत की चिर निद्रित आँवों को जगाने की ओर उच्च धरना के बाद भगवान् वहाँ भी पधारे, धम विरासु बनता समुद्र की भौंति भगवान् की ओर उमड़ती चली गई।

भगवान् महावीर मातृ-जाति के प्रति भी बड़े उदार विचार रखते थे। उनका कहना था कि 'पुरुष के समान ही स्त्री का भी प्रत्येक धार्मिक तथा सामाजिक क्षेत्र में शरार का अधिकार है। स्त्री-जाति को हीन एवं पतित समझना निरी भ्रान्ति है।' शतएव भगवान् ने भिन्न-संघ के समान भिक्षुणियों का भी एक संघ बनाया, जिसकी अधिनी

चन्दनमाला थी, जो अपने सघ की सब प्रकार की देग देग स्वतंत्र रूप से किया करती थी। भगवान् महाभारत के सब म ज्यों भित्तियों की संख्या १४ हजार थी, वहाँ भित्तु शिपों का संख्या ३६ हजार थी। भावकों की संख्या १ लाख ५० हजार थी तो भाविकाओं का संख्या ३ लाख कुछ हजार थी। स्वा-जाति के प्रति भगवान् के धर्म प्रवचन में कितना महान् आकर्षण था इसकी स्पष्ट भक्त ऊपर की संख्याओं पर से मिल सकती है।

तत्कालीन शुद्ध जातियों को भी भगवान् के द्वारा राजा सहारा प्राप्त हुआ। भगवान् जहाँ भी गये वहाँ सबप्रथम एक ही संदेश लेकर गये कि—“मनुष्य जाति एक है उसमें जात पौन की दृष्टि से विभाग का कल्पना करना किसी प्रकार भी उचित नहीं।” ऊँच नीच के सम्बन्ध में भगवान् के विचार कर्म मूलक थे जाति मूलक नहीं। भगवान् आबकल के उपदेशकों के समान मात्र उपदेश देकर ही रह गये हा यह बात नहीं। हरिकेशी जैम चरणाला को अपने भित्तु सघ में सम्मानपूर्ण अधिकार देकर उहाने जा फुल्ल कहा वह करके भीदिया दिया। आगम साहिब में एक भा उदाहरण ऐसा

नहीं मिलता, जहाँ भगवान् किसी राजा-महाराजा अथवा
 ब्राह्मण-सुत्रिय के महलों में विराजे हों। हाँ, पोलासपुर
 सगल कुम्हार क यहाँ विराजना उनकी पतिव्रता का
 एक उज्ज्वल आदर्श है।

भगवान् के जीवन क सम्बन्ध में क्या कुछ कहा जाय
 उनका जीवन एकमुष्ठी नहीं, सर्वसोमुष्ठी था। हम उ
 किसी एक हा दिशा में बन्दे नहीं पाते प्रयुक्त जिस से
 में भी देखने है वह सर्वत्र आग और प्राण दिम्बनाई द
 हैं। आगम-साहित्य तथा तन्त्रानान आग साहित्य पर दर्
 पात कर जाइये। आप भगवान् महारीर को कहीं विला
 राजाओं को आयाचार से हटाते पायेंगे, ता कहीं दीन-दरि
 गृहस्थों को पणान्चार से उचाते पायेंगे। कहीं भिक्षुओं
 निने वैराग्य का समुद्र उदाते पायेंगे, तो कहीं गृहस्थों क नि
 नानि मूलक शिक्षायें दते पायेंगे। कहीं गणधर गौतम के
 शिष्यों पर प्रेम की अमृत-वर्षा करते पायेंगे। ता कहीं उ
 को ग्लती कर देने क अथराध में पत्रकार उताते पायेंगे।
 जान यह है कि भगवान् को जहाँ भा कहीं जिस किसी
 रूप में पाते हैं, अलौकिक एव अदम्य रूप में पाते हैं।

— चिन्तन प्रण —

★ कर्म के साथ लड़न में आनन्द है, पर चुनचाप मन का भार खाते रहना शर्म की बात है ।

★ मानव-जीवन के विकास के लिये कठोरता और मृदुता दोनों ही आवश्यक हैं । अरुण अस्त कठोर और दूसरों के प्रति मृदु रहा ।

★ सत्य और तप—यही भाग्यता अहिंसा के दो पैर हैं ।

★ अति दूर देखना और त्रिजुल न देखना—ये दोनों डाकर लान के उपाय हैं ।

★ भय कहीं नहीं हो सकता यदि चाह न हो । भय का कारण है चाह । बालक भय और चाह एक ही मान सिकता के दो पार्श्व हैं ।

★ जैस सूर्य में धब्बा देखन के लिए काबल ली हुए शीत की आवश्यकता होती है । हज़ी भरह किसी में दाग देखने के लिए इधर्या या दुराग्रह की कालिमा अपेक्षित है ।

★ पतंग को घटाना कठिन है, नीचे खींच लेना सहज ।

14 को भी उन्नत बनाता कठिन, अरुणत करना सहज ।



सन्मति-सन्देश



५

अत्राण्येव बुभुक्षति किं तं पुनरेव यमभ्या ।

अत्राण्येव अत्राण्यं, चरिता सुहमेदण ॥

—उत्तराण्येन

अत्रा तु मनु मयव रक्षिवद्व्यो

गर्भिर्दण्डि सुमनादण्डि ।

अत्राण्यथा जाइव उर

मुराण्यथो मत्रदुस्त्राण्य सुचद ॥

७

—दशैकालिका

संभुक्त किं न सुभुक्त सरोही मनु पेष दुल्लहा ।

नो ह्यण्यमति रादथो नो मुनमं पुणराधि बीरिध ॥

८ :

—सप्ततगि

मन्त्रमूदण्यमूबभ मभं मबाई पासथो ।

पिदिशास्यस ईनम पाद कभं ७ यथइ ॥

—दशैकालिक

५

आत्मा आत्मा के साथ ही युद्ध करना चाहिए । अर्थात्
 शत्रुओं के साथ युद्ध करा स कजा लान । आत्मा के द्वारा
 आत्म-वर्षी ही वास्तव में पूरा मुक्ति दिला है ।

६

अन्य इन्द्रियों को अच्छी तरह नियंत्रित करना हुआ जाना
 स आत्मा की निम्नतर रक्षा करने रहना चाहिए ।
 पापों से अर्थात् आत्मा संसार में भ्रमण करता है, और
 अर्थात् आत्मा सब दुःखों से मुक्त हो जाता है ।

७

मनुष्याऽपि, ब्रह्मा, अथे शुभ कर्तव्य नदीं ब्रह्मे एव शक्ति-
 अन्तर्गत्य आत्म दाना दुर्भेद है । अर्थात् दूर शक्ति की भाँति
 कर नहीं आती । मानव आत्म पुनर्जात वाता आत्मान नहीं ।

८

दो प्रकृति-भाव का आनन्द सन्तुष्टा है, आनन्द-मय ।
 सब सन्तान ही स दग्ना है, निराश्रय हाकर आत्मा का
 दमन करता है, वह एव-कर्म से निवृत्त नहीं रहता ।

: १३

दुस्त्रिणा । अत्ताणुमेर अभिखिगिन्म,
एवं दुस्त्रिणा पनुचमि ।

: १४

—आचार्य

पार्थ नार्थं तस्या दवा एवं चिह्नं सपुनर्गण्य ।
अत्राद्या किं काही किं वा नाहिद मय वावम ।

—दशरथ

१५

सरीरमात्रं नान्दं त्ति, जीवा पुचदं गविथो ।
संसारं अणुवो पुत्ता, अं तरन्ति महिमिथो ॥

—उत्तम

१६ :

तत्र अहमंति न मे आद्य कोदं न काश्मयि कस्तं रि ।
तदं न पणामिथु देव आचार्यं महमिजासिन्ना ॥—आचार्य

१३

मानव ! तू अपने आर को रस में कर । इस प्रकार तू
दुःखों से सुखाय पा जायगा ।

१४

पहले ज्ञान है, पाछे दया—आचरण । इसी क्रम में
सद्गुरु स्वामी वर्ग अपनी संसार-यात्रा में निरंतर श्रम करता
है । भला, अज्ञाना मनुष्य क्या श्रम-साधना करेगा ! भेद
तथा प्रथ का यह कैसा ज्ञान रहेगा ?

। १५

शरीर को ताव कटा है, आत्मा नाशिक कहनाया है,
समार को मनुद्र बननाया है । इस संसार-समुद्र का महिषि-जन
पाठ करने हैं ।

१६

म अकला हूँ । मेरा कोर नहीं है, और न मैं ही किना
का हूँ । इस प्रकार साधक अपने को अकला ही समझ ।

३२

जरा ज्ञान न पीनेइ गही ज्ञान न यहर ।
जामिदिवा न हावनि, ताव धम्म समावरे ॥

—दशव०

३३

अदाणं वो महन्तं तु, अप्पाइथा पयजइ ।
गच्छन्तो सो दुही होइ छुहा-त्तएणए पाटिथो ॥

—उत्तरा०

३४

एव धम्मं अकाऊणं, जो गच्छइ परं भयं ।
गच्छन्तो सो दुही होइ गही रोहि पीटिथा ॥

—उत्तरा०

३५

अदाणं वो महन्तं तु, एवाइथा पयजइ ।
गच्छन्तो सो दुही होइ छुहा-त्तएण विवजिथो ॥

—उत्तरा०

३२

अब तक बुझा नहीं उठाता, अब तक व्याधियाँ नहीं
मृती, अब तक इन्द्रियों हान, अथवा नहीं होती तब तक
धर्म का आचरण कर लेना चाहिए ।

३३

जो पथिक बिना पापेय लिये ही लम्बी यात्रा पर चल
पड़ता है, वह आग जलाना हुआ भूख तथा प्यास से पीड़ित
होकर अर्थात् दुःखी होता है ।

३४

इस प्रकार जो मनुष्य बिना धर्मोचरण किये पथिक
जाना है वह भी यहाँ माना आधि-व्याधियों से पीड़ित
होकर अर्थात् दुःखी होता है ।

३५

जो पथिक लम्बी यात्रा में अथवा साथ पापेय लेकर
चलता है, वह आग चलकर भूख और प्यास से तनिक भी
पीड़ित न होकर अर्थात् सुखी होता है ।

३६

एवं धम्मं वि काऊणं, वा गच्छद्दत्तरं एवं ।
गच्छन्ना सा सुदी हाह, अक्कम्मे अक्कुर ॥

—उत्तरा०

३७

जहा मागग्गिआ आणु समं दिथा महारह ।
विस्समं मणम्मोदयणो अक्कने भग्गाम्मा सोदरं ॥

—उत्तरा०

३८

एवं धम्मं विउक्कम्म अहम्मं पट्टियत्रिया ।
काले माणुहं परो, अक्करो म्भोव सोदर ॥

—उत्तरा०

३९

जा जा बभूह रक्खी न गा पत्तिनिदत्तह ।
अहम्मं पुण्णमाणम्म अफला जंति राहओ ॥

—उत्तरा०

३५

जो मनुष्य अपनी भौतिक धनान्तरण करके परनाक जाता है वह वरों मनुष्यों तथा पाश-रहित होकर अत्यन्त सुभी होता है ।

३७

द्वितीय प्रकार मूर्ख गरीबान्तरण करता हुआ भी एक माग को छोड़कर रिक्त मार्ग पर जाता है, और गरीबी की घुरी टूट जाने पर शोक करता है—

३८

तृतीय प्रकार अज्ञाना मनुष्य भी धन को छोड़कर और धर्म का प्रक्षय कर, अन्त में धन के नुई में पड़कर जीवन में घुरी टूटने पर शोक करता है ।

३९

चा रात और दिन एक नार अतीत की ओर चले जाते वे कभी वापिस नदा लौटते, जो मनुष्य धर्म, पाप करता उसक वे रात दिन तिलुन निष्कल बात हैं ।

८२

मदं वदन्तं मया सुप्रसन्नतरुणा ।
मदं वदन्तं मया मया मया मया ॥

—श्रीः

८३

अथ वदन्तं मया,
मया मया मया मया ।

—प्रश्नव्याकरण

८४

अथ वदन्तं मया,
मया मया मया मया ।

—सुप्रसन्न

८५

अथ वदन्तं मया, मया मया मया मया ।
अथ वदन्तं, मया मया मया मया ॥

८६

—मया

८५

जा भाषा कटार हो, नूतनों को दुःख पहुँचाने वाली हा
चाहे वह सत्य हा क्यों न हो, नहीं बालनी चाहिए,
क्योंकि उसका पाप का आगमन होता है ।

८६

सत्य ही लोक में सार-तत्त्व है । यह महासमुद्र से
भा अधिक गम्भीर है ।

८७

सदा सत्य स सम्पन्न हाकर विश्व क प्राण्यमात्र के
साथ मैत्री भाव रखे ।

८८^१

सत्य यश का मूल है, सत्य विश्वास का प्रधान
कारण है, सत्य स्वर्ग का द्वार है, और सत्य ही सिद्धि का
सोपान है ।

अस्तेय

८६

चित्तभंगमाचित्त वा, अर्ण वा अह वा घट्टु ।

दत्त सादृश्य मित्त वि, उगह से अजाहया ॥

—इत्यने०

६०

त अप्पणा न गिरहति, ना वि गिरहावण परं ।

अन्न वा गिरहमाणं पि, नाणुजाणंनि सुजया ॥

—इत्यने०

६१

दत्त-सादृश्य माहस, अदत्तस विवजण ।

अणवज सपि-स्त, गिरहणा अणि दुक्कर ॥

—उत्तरा०



अस्त्रोप

८६

सचेतन पत्थर हा या अचेतन, अल्प मूल्य पदार्थ हो या बहुमूल्य आर तो क्या, दन्त शोधन की सीक भी जिस पदार्थ न अधिकार में हा उसकी आस्था लिए बिना—

६०

पूण सधमा साधर न स्वय प्रहण करते हैं न दूसरो का प्रहण करणे क लिए प्रगित करते हैं, और न प्रहण करन वालो का अनुमादन ही करते हैं ।

६१

दान कुरेदने की सीक आदि तुच्छ पदार्थ भी बिना ग्णित चारा स न होना निर्णय एई एषयाय भोजन पान भी दाना न यहाँ स दिवा हुआ ही लेना—यह धडी दुष्कर मान है ।



ब्रह्मचर्य

६२

मूलमेयमहम्मस्त महादोष-समुत्थय ।
समहा मेदुष्य-ससग, निम्नाया वज्रयति ख ॥

—दशवै०

६३

विरई अचधचेरस्त, कामभोग-रसजुषा ।
उगध महव्यय धर्म, धारेयन्व सुदुष्कर ॥

—दशवै०

६४

‘आस च छद् च विगि च धीरे !
तुम चैव त सल्लमाहट्टु ।’

—आचारग

ब्रह्मचर्य

६२

अ-ब्रह्मचर्य अधर्म का मूल है, महा-दार्पा का स्थान है इसलिए निर्ग्रन्थ—माद्य-साधक मैयुत-ससग का सबका परित्याग करते हैं ।

६३

काम-भागों का रस न खान लेने वाले के लिए अ-ब्रह्मचर्य से विरत होना और ब्रह्मचर्य का महानत धारण करना, बड़ा ही कठिन कार्य है ।

६४

धीर पुरुष ! भोगों की आशा तथा लालसा छोड़ दे !
तू स्वयं इस कष्ट को लेकर क्यों दुःखी हो रहा है ?

६५

वाभागुगिद्विषय सु दुःख

सर्वस्य न गहन सदैयगहन ।

ज शङ्ख माथुनिय च निधि,

तस्मिन्तस्य चरुई शोयगगो ॥

६६

—उत्तरा०

अर्चयन्तिय धार पमाय दुरि द्विर्ष ।

नाऽऽपरति मुण्डा लाए, भेषायणवन्निगा ॥

—दृश्ये०

६७

ने गुणे से श्रावट

जे श्रावट से गुण ।'

६८ :

—शाचारम

जदा कुम्भे गण्णगाई मए देहे समहरे ।

एव पादाइ मेहानी अर्चयन्तिय ममाहरे ॥

—शुक्लता०

६५

देवताओं सहित समस्त संसार के दुःखों का मूल एक मात्र काम भोगों की वासना ही है। काम भोगों के प्रति नीतरा—निश्चय साधक शारीरिक तथा मानसिक सभी प्रकार के दुःखों से छूट जाता है।

६६

जो मानशील साधक समय-घातक दोषों से दूर रहते हैं, वे लोक में रहते हुए दुःख, प्रमाद-स्वरूप और भयकर अत्रतचर्य का कभी समन नहीं करते।

६७ :

इन्द्रियों के विषय को ही मगार कहते हैं, और समार ही इन्द्रियों का विषय है।

६८

बैस बहुधा त्वरने की जगह अपने अगों को अपने शरीर में भिका लेता है, उमा प्रकार संदित बन भी विषया भिनुय इन्द्रियों का आन ज्ञान से भिकाइ कर खने।

६६

दृष्टमेव नावर्कवन्ति, जे जगा धुर आठिणा ।

जाह-मरणु पापलाय घर मरमरो ६७ ॥

—आशासंग

१००

कथ-बु दग चहचाए, वि- भु बर एधरे ।

पर्य मील चहत्त गु दुम्भले गमद मिष्ट ॥

—उत्तरा०

१०१

कथ-गध-मवकार, ह्यिधो गरुणाधि य ।

अच्छंदा जे न सुजात नम चाइ ति बुग ॥

—दशवे०

१०२

जे य कते निष्ट भोए, लडे विविहाकु र ।

साहीण चयद भोए, म हु चार ति दुषद ॥

—शवे०

६६

जो चारित्र्य पर दृढ़ रहते हैं व काम-भोगों की आकांक्षा नहीं रखते । इसलिए साधक को जन्म-मरण का स्वरूप जान कर संकम के मार्ग पर हस्ता के साथ विचरण करना चाहिए ।

१००

जैन शूकर धान्य-मिष्टान्न के पाल को छोड़कर विष्टा की श्राव ही दौड़ता है उमी प्रकार अज्ञानी मनुष्य गदा चरण को छोड़कर दुराचरण में हा रमता है ।

१०१

जो मनुष्य किसी पराधीनता व काम्य वस्तु मध अचकार आदि का उदभोग नहीं कर सकता, वह त्यागी नहीं कहला सकता ।

१०२

जो मनुष्य सुदर और प्रिय भोगों को प्राप्त करके भी उनकी श्राव न पीठ फेर लेता है सब प्रकार के स्वाधान भोगों का परिशग करता है, वही सच्चा त्यागी है ।

। १०३

देव दाशुभ-मघना, जङ्गल-रक्षस्य किङ्करा ।
 बंमयारिं नर्मन्ति, दुक्करं वे करति ते ॥

—उत्तरा०

१०४

एष धर्मे धुए गिञ्चे, सामए जिण-दैसिए ।
 सिद्धा सि भंति चाणुण, मिजिहम्मति तहावरे ॥

—उत्तरा०



१०३

जो मनुष्य दुष्कर ब्रह्मचर्य मत का पालन करता है, उस दैव, दानव गंधर्व, यक्ष, राक्षस और कित्तर आदि सब नमस्कार करते हैं।

१०४

यह ब्रह्मचर्य धर्म प्रुण है, निय है, शरयत और जिनोसदिष् है। ब्रह्मचर्य की साधना स अतात न अन्न सिद्ध हो गये हैं, वर्तमान में ने रहे हैं, और मरिष्य म ह्रीं।



अपरिग्रह

१०५

‘नत्थि एरिसा पासो,

पद्धियथा अत्थिसव्व चीकाण ।’

—प्रश्न-वाकरण

१०६

जे मनाइअमइ जहाइ स जहाइ ममाइअ ।

स हु दिठभए मुणी जम्म नत्थि ममाइअ ॥

—आचार्य

१०७

न सो परिग्गहो बुत्तो नायपुत्तेण तादग्गा ।

मुच्छ्रा परिग्गहो बुत्तो इइ बुत्त महेमिणा ॥

—दशरै

१०८

लोहस्स अणुपागो मत्ते अत्तवरामत्थि ।

जे सिवा मत्तिहीकामे गिही पत्तदए न स ॥

—दशरै

अपरिग्रह

१०५

समाज के सब जीवों को बचकन धाले परिग्रह से बढ
कर कोई दूसरा बचन नहीं ।

१०६

जो ममत्व-बुद्धि का परिग्रह करता है वह ममत्व का
साधक करता है । बन्धुन वही मनार भीष्ट साधक है जिस
किम्मा प्रकार का ममत्व नहीं है ।

१०७

दयालु शतपुत्र महानीर ने पदाथों को परिग्रह नहीं
करा है । उन्होंने वास्तविक परिग्रह मूर्च्छा—आत्मिक को
कही है ।

१०८

संग्रह करना भीतरी लोभ की भलक है । इसलिये जो
साधु मर्षदा विरुद्ध कुल्ल भी संग्रह करना चाहता है, वह
गन्ध है साधु नहीं ।

१०६

धन धत्र पेस्यभोसु, परिष्ठा विवन्नपुं ।
मन्तरंभ परिष्ठाया निम्नमत्त सुदुवकर् ॥

—उत्तरा०

१०७

सध्वत्यु षडिणा बुद्धा, संस्मरण परिष्ठाहे ।
अविष्ठायाणो वि देहमि, नाऽऽपरति ममादय ॥

—दशमै०

१११

लोग विच च गु उन्नाए,
एए मी अविष्ठाया ।

—अन्वारा

११२

अश निव्विदए भाए, अ विष्ठा जे व मासुसे
तथा अयइ सपोर्ग सन्मतर-शहिरं ॥

—दशमै०

१०६

पूर्व सन्ना को धन धान्य और नौकर चाकर आदि
 मय प्रकार क परिग्रह का त्याग करना होता है। समस्त पाप
 कर्मों को त्यागकर निमन्त्र होना बनी ही कर्मि बात है।

११०

रानी पुत्र सख्य के साधन उपकरणों क लेन तथा
 ग्वा में कर्ण किसी भी प्रकार का मन्य नहीं रखते। और
 ता क्या, अन्न शरीर तक पर भी ममता नहीं रखते।

१११

जीवाम्बा ने श्रावतक जो भी दुःख परभरा प्राप्त की है,
 वह सब पर पदार्थों के संयोग से ही प्राप्त हुई है। अतः संयोग
 सम्बन्ध का सर्वथा परित्याग कर देना चाहिए।

११२

जब व्यक्ति देह-मनुष्य सम्बन्धी समस्त भोगों से विरक्त
 हो जाता है तो वह बाहर और अंदर क सब परिग्रह को
 श्रेष्ठ कर आत्म-साधना में जुट जाता है।

२]

ममति-सदेश

११३

पादाहारा भावमण्ड्यो य जो होइ धामनिहा य ।

धावार्थि उदगरण्, तस्म हु देवा वि पणमति ॥

—आशयक-निर्युक्ति

११४

जं वि वथ च पावं वा, कर्त्तव्यं पावुञ्छुण ।

जं वि संजम-लज्जहा धारति परिहरति य ॥

—दशमे०



११३

जा ताबक अलाहायी, अल्प भावा, अल्प-शादा थार
अल्प-परिग्रहा है, उस देवता भी प्रणाम करते हैं ।

११४

मुनि जो नी वस्त्र, पात्र, कंज और रजोदरुथ आदि
रस्तुणें रखते हैं, वे सब एक-मात्र संयम-रत्ता के निमित्त हैं ।
उनक रक्वन में किसी प्रकार की परिग्रह-बुद्धि नहीं है ।





कपाय-विजय

११५

कोडा इ माण्यं हरिणाय वीरे ।
लोभस्तु पास निरयं महत् ।

—श्रान्तारा

११६

कोह माण्यं च मायं च लोभं च पायवद्भृत् ।
उमे चत्तार दोषे उ, इच्छन्तो हिक्मप्यथो ॥

११७

—दशवं०

कोरो पीद पण्यरुद माण्यो विणयनारण्यो ।
माया निस्तारिण नाट्ट, लोभो सयदिण्यारण्यो ॥

—दशमै०

११८

उदममेष हण काह माण्यं महत्या विण ।

कृपाय विजय

११५

वीर । क्रोध, मान आदि विकारों का नाश करो । लोभ भयंकर परिणामों पर विचार करो ।

११६

जो मनुष्य श्रवणा हित चाहता है वह पाप बटाने वाले क्रोध मान, माया और लोभ—इन चार दोषों का सदा के लिये छुट दे

११७

क्रोध प्रीति का नाश करता है मान विनय का नाश करता है माया मित्रता का नाश करती है और लाभ सभी अद्गुणों का नाश कर देता है ।

* ११८

शान्ति—हृमा से क्रोध का नारे, नम्रता से अभिमान का जीने, सरलता से माया का नाश करे, और सन्तोष से लाभ को बश में करे ।



११६

रागो य दोषो यि कम्म-आयं
 कर्म्म च जाइ-भरण्य वर्यति ।
 कम्म च जाइ-मरण्य मूलं
 दुक्कयं च जाइ-भरण्य रयति ॥

—उत्तरा०

१२०

अहे ववन्ति कहिय माण्यण अइमा गइ ।
 माया गइ पण्णियाओ लोइओ दुइओ भयं ॥

—उत्तरा०

१२१

कोहो य माणो य अण्णियणीया
 माया य लोभा य पवइ-माया ।
 चत्तारि एए कसिया कसाया
 मिच्चति मूलाइ पुण्य-भवस्त ॥

—दशौ०

११६

राग और द्वेष ये दो कर्म कबीर हैं, अतः कर्म का उपादक मोह माना गया है। असार में जन्म मरण का मूल कर्म है, और जन्म मरण ही एक-मात्र दुःख है।

१२०

मोह से मनुष्य नीच गिरता है मान से अधम गति पाता है माया से सद्गति का नाश होता है और लोभ से इस लोक तथा परलोक दोनों में महान् भय है।

१२१

अनिच्छीन मोह और मान तथा उन्ते हुए माया और लोभ—ये चारों ही कथाय पुनर्वन्-मरुपी वृत्त की जड़ों का सींचते रहते हैं।

। १२२ ।

मह-सल्लो बह वि कट्टुमा, पार बीरं तयं चरे ।
दित्र वासस-स्तं तता वि त तस्म निष्पत्तं ॥

—महानिशीथ

। १२३ ।

काई च मार्णं च तद्देव मार्ष,
लोभं चउथं अरुभय दोमा ।
ए-गणियं वता अरहा महेसा,
न कुब्बद पाव न कारोइ ॥

—शत्रुहताग

१२२

छुन कष्ट करने वाला शक्ति चाहे देवताओं के हस्त
वर्ष तक भी घोर एव उग्र तप करे, परन्तु अन्तर म शान्त
होने स उसका वह सारा तप निष्फल है ।

१२४

क्रोध, मान माया और लोभ—ये चार अन्तरा
के भयकर दोष हैं । इनका प्रशुत त्याग करने वाले अह
मर्षि स्वयं पाप करते हैं, और न दूसरों स करवाते हैं ।



तृप्या

१२४

पुङ्गी वाची क्वा चर हिरण्य पशुभिराह ।
परिपुण्यं नालमेगस्म, हृद वित्रा तत्र चरे ॥

—उत्तरा०

१२५

कामण्यं पि जा इमं लोचं पन्पुण्यं दलेज्ज इक्वस्म ।
तेण्णापि स न संत्सु, हृद दुप्पूरए इमे आवा ॥

—उत्तरा०

१२६

सुरण्यं दपस्म उ पञ्चदा भव
सिवा हु कलामसमा असंयथा ।
नस्म सुद्धस्म न वेहि किञ्चि,
इच्छा हु आगाससमा अग्धातया ॥

—उत्तरा०

तृष्णा

१२४

चापल और जो आदि धान्यों तथा सुगन्ध और पशुओं
 से परिपूर्ण यह समूची पृथ्वी भी लोभी को तृप्त नहीं कर
 सकती—यह जान कर स्वयं में खत होना चाहिए ।

१२५

अनेक वस्तु-तुल्य पदार्थों से भर-भूर सारा विश्व भा किसी
 एक मनुष्य को दे दिया जाय, तो भी वह सन्तुष्ट न होगा ।
 अहो ! तृष्णा का गड्ढा दुम्बर है ।

१२६

कैलान के समान चौड़ी और सान के अक्षर-ब पर्यंत
 भी यदि पस में हों, तो भी तृष्णाशील शक्ति का तृप्ति
 के लिए वे न-सुख के बरतन हैं । कारण, तृष्णा आकाश
 के समान अनन्त है ।

१२७

बडा लाडा तडा लोडो लाहा लोडो पयड्डइ ।
दोमास कय कअ, कोणीए वि न निहियं ॥

—उत्तरा

१२८

दुकारं हयं जस्य न होइ मोहो
माने हथ्यो जस्य न होइ तएहा ।
तएहा हवा जस्य न होइ लोणे,
लोडो हथ्यो जस्य न किंचयाइ ॥

—उत्तरा०

१२९

भद-नएहा लया हुत्ता भीमा भीमफलोदया ।
तमुच्छित्तु, जइजानाय, विहरामि मशामुणी ॥

—उत्तरा०



। १२७

ज्यों-ज्यों लाभ हाता है स्वा-ध्यों लोभ भी बन्ता जाता है । देखिए, पहले केवल दो मारो तुरण की इच्छा था, पर बाद में वह तृष्णा कगेजों पर भी पूरी न हो सकी ।

। १२८

त्रिष मोह नहीं, उसका दुःख दूर हो गया । त्रिष तृष्णा नहीं, उसका माह चना गया । त्रिषक लोभ नहीं, उसकी तृष्णा नष्ट हो गई और त्रिषक पास अर्थ संग्रह नहीं है, उसका लाभ दूर हो गया ।

। १२९

हे महासुने ! सगर-तृष्णा एक मयकर लता है त्रिषके फल भी बड़े मयकर ह । मैं उस लता का उच्छेद करके तुव पूर्णक विचरण करता हूँ ।



अप्रमाद

१२०

पमायं कममाईसु, अप्रमायं तदावरं ।
समायादेकश्चो यापि, नलं पश्चिमेय वा ॥

१२१

—यूनःसाग

‘धामे ! मुत्तमपि एो पमायए
वश्यो अच्चेइ जीवियं च ।’

१२२

—आचारम

दुमरत्तए पंडुयए जहा निवत्तइ रा—गणाय अघए ।
एवं मणुवाए जीवियं समदं गोधम मा पमायए ॥

—उत्तरा०

१२३

कुरामा जह ओसाविदुए थोरं चिदई लभमागए ।
एवं मणुवाए जीवियं समदं गोधम मा पमायए ॥

—उत्तरा०

अप्रमाद

१२०

प्रमाद को कम कहा है, और अप्रमाद को अकर्म प्रमाद के होने या न होने में ही क्रमशः मूर्ख और परिणत कहलाता है।

१३१

धीर ! एक मुहूर्त (क्षण) का भी प्रमाद न कर । ते श्रायु बीत रही है, और जीवन डल रहा है ।

१३२

जैव वृक्ष का पत्ता रात्रि-मनुह धीत जाने के बाद पीत होकर गिर जाता है, वैस ही मनुष्यों का जीवन भी श्रायु समाप्त होने पर महमा नष्ट हो जाता है । इसलिए गौतम क्षण मात्र भी प्रमाद मत कर ।

१३३

धुरा की नोक पर स्थित आग की भूद की तरफ मानव जीवन भा क्षण भंगुर है इसलिए गौतम ! क्षण-मात्र भी प्रमाद मत कर ।

१३८

तिरणो हु मि श्ररणुव मई, किं पुण चिह्नम तीरनागद्या ।
 अभिनुर पार गमिच्छए, भवयं गोदा मा पनादए ॥

—उत्तरा०

१३९

सद्यो वसन्तस्म भव
 सद्यो श्रवमास्म नयि भय ।

—आचार्य

१४०

जम्मादि मच्चुणा सप्तं, जस्य वाङ्मयि पनाकण ।
 आ जाणु न मरिस्मान, सो हु रंगे मुए मिदा ॥

—उत्तरा०

१४१

तं तह दुल्लदस्य विजुजया-चंचल माणुसत्त ।
 लदुण ओ पमावइ सो कापुरिसो न सणुसिसो ॥

—प्रोपश्यक मन्त्रगिरि

१३८

वृत्तिमान मंभार समुद्र को तैर चुका है, अत्र किनार पर
आकर क्यों अटक गया है ? परले पार जान के लिए जितना
हो सके जल्दी कर । गीतम । साथ-साथ भी प्रमाद मत कर ।

१३९

जो व्यक्ति प्रमादी-गाकिन है उस मरत मय है ।
अप्रमत और मनक रहन वाले क निग कहीं भी भय नहीं ।

१४०

द्विजकी मृत्यु न मित्रता ही, जो भागकर मृत्यु स रिड
लुप्त सकता हो अथवा बिम यह निश्चय हो कि मैं मरूँगा
नहीं—वही किमी सन्कर्म को जन पर छोड़ सकता है ।

१४१

अति दुर्लभ तथा विद्वली के समान बचन मानर
जन पाकर भी जो आम-साधना में प्रमाद करता है, यह
कायुरुप (कायर) है सायुरुप नहीं ।

१४२ ।

ब्रह्मलोकादपि, सुरेण श्रेयैव वरं काउ ।
 मन्त्रु शकनुण हिश्रयो न हु नीमइ श्रावयंतोदि ॥

—बृहत्कल्प भाष्य

१४३

जागरह नरा शिञ्च,
 जागरमाणुस्म वड्ते बुदा ।'

—बृहत्कल्पभाष्य



१४२

मनुष्य ! तुम्हें जो म कर्म कल बगना है, उस शाब्द ही
 हर लेना श्रेयस्कर है । मृत्यु रज्जु निर्भय हैं उसक ध्यान
 का काई भरोसा नहीं ।

१४३

मनुष्यो ! तुम ध्यान में हमेशा जागते रहा । बागरण
 शीव मनुष्य का ज्ञान जाता है चमकता है ।



विषयों का मीठा विष !

१४४

जहाँ य किनासकला मशोरमा,
 रखण वरपेण य भुजमाया ।
 ते पुण्ड्रए जीविइ पशमाणा,
 एमात्मा कामगुणा विना ॥

—उत्तरा•

: १४५

जहाँ किनास-फलाण, परिणामो न सुन्दरो ।
 एव सुत्ताण भोगाण परिणामो न सुन्दरो ॥

—उत्तरा•

१४६

सल कामा रिग कामा, कामा आसीविमोवमा ।
 कामे य पत्यमाणा, अकामा चति दोग्गह् ॥

—उत्तरा

विषयों का मीठा विष !

१४४

जैसे किशक फल रूप-रंग और रस की दृष्टि से प्रारम्भ में स्वादे समय तो बड़े मधुर और मनोरम लगते हैं, पर बाद में जीवन के नाशक हैं, वैसे ही काम भोग भी शुरू में बड़े मीठे और मनोहर मालूम देते हैं, पर विषक-काल में बस नशनाश कर डते हैं ।

१४५

जैसे किशक फल का परिणाम अच्छा नहीं होता, उसी प्रकार भोग हुए भोगों का परिणाम भी अच्छा नहीं होता ।

१४६

काम भोग शल्प हैं, विष हैं और विषधर सब एक समान हैं । काम भोगों की लालसा रखने वाले प्राणी उन्हें प्राप्त किये बिना अतृप्त दशा में ही दुर्गति का प्राप्त हो जाते हैं ।

१४७

कामेषु गिद्धा शिचरं करात
म मद्यमाशा पुग्गिरात रम्भ ।

—श्राचाराग

१४८

मुह बि मग्गिण्तो कथ नि कगीरु नाथ उह माग ।
इ दिय विग्गमु तदा गधि सुह म्मु वि गविड ॥

—भक्त परिण

१४९

‘कामा दुरनिष्कमा,
जीविय दुग्गिष्ठम ।

—श्राचाराग

१५०

ए (मत्ता) काशं उदरता पावकम्महि

वाग् आय गु । मे गयत्त ।

—श्राचाराग

१
२
३
४
५
६
७
८
९
१०

१४७

काम भोगों में आसक्त प्राणी कर्मों का संवर्ध करने है
आर कर्मों से भावित होकर मग्न में परिभ्रमण करने रहने है ।

१४८

जैसे कने क रकष में ग्योबने पर भी कहीं छार नहीं
मिलता इसी प्रकार इन्द्रिय विपत्तियों में तत्परों में ग्योब खल्व
करक भी कहीं सुच नहीं दम्बा ।

१४९

कामनाओं की पूर्ति हाना कठिन है । जीवन बनाया
गई जा सक्ता ।

१५०

जो काम-आतों में नहीं कैमता, पार कर्मों से अलग
रहता है, आर आत्मा को पतन से उचालता है । वही वीर
है, वही आत्म-रक्षक है, आर वही विद्वान् तथा निपुण है ।

: १५१ :

समेसाणा पलेसाणा,
पुणो पुणो ब्वाइ पक्कप्पति ।

—आचारंग

१५२

सम्म गिंठ हमा ब्वाइ
अरणा तम्म पुअा सिद्धा ।

—आचारंग

: १५३ :

उरलोरो ह्वाइ भोगेनु, अमोगी नारलिप्पई ।
भोगी म्मइ संसारे अमोगी विप्पमुच्चइ ॥

—उत्तरा०

१५४

सब्बं रिक्खिविं गीवं सब्बं गह्ठं विडम्मिपं ।
सब्बे आभरणा मारा सब्बं कामा दुत्तवहा ॥

—उत्तरा०

१५१

ससार के भोगों में फसे रहने वाले लोग बार-बार
जन्म-मरण प्राप्त करते रहते हैं ।

१५२

जो साधक भोगों की आशा आकांक्षा नहीं रखता,
वह साधक—यापमय प्रगति क्यों करेगा ?

१५३ :

जो मनुष्य भोगी है—भोगात्मक है, वही कर्म-मल स
निभ होता है, अभोगी लज्ज नहीं होता । भोगी ससार में
अभय करता है, अभोगी ससार-बन्धन से मुक्त हो जाना है ।

१५४

सब वैयक्तिक गान विनाश हैं, सब नाच रंग विडम्बना
हैं, सब अर्थकार शरीर पर बंधन हैं, अधिक क्या, ससार
क जो भी काम-भोग हैं, वे सब-के-सब दुःखावह हैं ।

१४५

१ कामभोगा गमय उवैति

१ यात्रि भगा विगई उवति ।

जे तन्वथीगी य परिगई य ।

सो तेनु भोडा विगई उवइ ॥

—उत्तरा०

१४६

पुरिमो रम पायकम्पुणः पलितं मणुषाय जीविं ।

सदा इह काम-मुनि-च्छया, मोदं ब्रति नरा श्रम-तुडा ॥

—गुण-नाम

१४७

यद्दुःखमा हु ब्रतमो सत्ता कामेदि माणया ।

अत्रनेण वहं गच्छति सराणेण पभंगुरेण ॥

—आचारण

१ १५३

काम भोग करने-आप तो न किसी मनुष्य में समभाव पैदा करते हैं, और न किसी में निरुक्ति ही पैदा करते हैं । जो काम-भोगों में राग-द्वेष क नाना संकल्प बनाता है, वही मोह स विकार-ग्रस्त हो जाता है ।

१ १५६

पुन्य ! मानव-जीवन क्षण भंगुर है, अतः शीघ्र पाप-कर्म स विरत हो जा । संसार में आगवत तथा काम-भोगों में मूर्च्छित अमझी मनुष्य बार-बार मोह को प्राप्त होने रहते हैं ।

११७

संशयों जीव दु सों स धिरे रहते हैं । फिर भी व काम-भोगों स आकर्षक बने रहने हैं । नि नाद, क्षण-भंगुर शरीर क लिए पाप कर्म करक व भयङ्कर दु ग्य पाने रहने हैं ।

१५८

काम कमी मनु अर्ध पुरिण,
 य तोपर, जूर सगर पस्तिपर ।

—आचार्यग

१५९

वदमेतलोकरा वुकालदुकरा,
 पगामदुकरा अर्थिनाममोकरा ।
 संतास्मोकरास्म विरकाम्भा,
 स्तार्थी अर्थ धार्य उ कामभोगा ॥

—उत्तरा०

*

१५८

मैसाएँ मनुष्य सदा कामनायाँ की पूर्ति में उल रहता है । वह शाक करता है, खिर होता है, मर्यादा ह दता है, तथा परितान करता है ।

१५९

काम भाग सृष्ट-मात्र सुख देने वाले हैं, ता नि काल तक दुःख देने वाले ! उन में सुख बहुत मोड़ा अर्थाधिक दुःख हा दुःख है । मात्त-सुख क वे भय शनु हैं और अनयो का स्वाग हैं ।



विषयों का मीठा विष ! -

१४४

बड़ा य किंवागहला मणोरमा,
 रसय वस्येय य भुजमाणा ।
 ते खुदुष्ट बीरिष पद्यमाणा,
 एमोवमा कामगुणा विद्या ॥

—उत्तरा०

१४५

बड़ा किपाव-कलाय परिणामो न सुन्दरो ।
 पय भुक्ताय भोगाय परिणामो न सुन्दरो ॥

—उत्तरा०

१४६

सल्ल कामा रिमं कामा, यामा आसीविशोवमा ।
 यामे य पर्येमाणा, श्रकामा जति गोगाई ॥

—उत्तरा०

विषयों का मीठा विष !

१४४

जैसा किनाक फल स्पर्श और रस का दृष्टि से परम में आते समय तो चड़े मधुर और मनात्म लगते हैं, पर बाद में जीवन के नाशक हैं, वैसा ही काम-भोग भी शुरू में चड़े मीठे और मनोदग् मालूम देते हैं पर किनाक-काल में व सर्वनाश कर देते हैं ।

१४५

जैसा किनाक फल का परिणाम अच्छा नहीं होता, उसी प्रकार मां हूए मोर्गों का परिणाम भी अच्छा नहीं होता ।

१४६

काम-भोग शल्प है, विष है और विषधर सर्व क ममान है । काम-भोगों की लालसा रखा बाल पार्यो उन्हें प्राप्त किये बिना अतृप्त दशा में ही दुर्गति का प्राप्त हो जाते हैं ।

१७६

वथा अरीश न भवति तार्थ,
 भुक्ता दिया निति तर्भ तमेण ।
 ज्ञाना य पुत्ता न ह्यति तार्ण,
 का नाम ते अरुमनञ्ज एव ॥

—उत्तरा०

१७७ :

चिन्ता दुपर्य च चउण्यव च,
 रता मिह घण धत्र च मर्द ।
 कम्मपराश्रा अयसो पवाद
 परं भर्द सुन्दर वायगे वा ॥

—उत्तरा०



१७५

पत्ने हुए वद तेरा प्राण नहीं कर सकते त्रिमूर्तिये
 हुए ब्राह्मण प्रधकार से अधकार में ले जाते हैं, तथा पैदा
 किए हुए पुत्र भी रक्षा नहीं कर सकते, ऐसा दशा में कौन
 विवेकी पुरुष उन्हें स्वीकार करेगा ?

१७७

द्विवद (दास-दासी) चतुषद (घोड़ा हाथी), सेन
 गृह और धन धाय सब कुछ छोड़ कर निवशता का अग्रस्था
 में प्राणी अनेक कृत कर्मों के साथ अन्धे या भुरे परम्य
 की चला जाता है ।



मान सम्मान

•

१७८

न वाहिरं परिभवं अतारुं न समुत्करोते ।
मुग्रलाभे न मञ्जिन्ना, अचा तवस्मि द्यादप ॥

—दशवै०

१७९

त्रयणं रयणं चैव, उणं पूयणं तथा ।
इण्डी सकार सम्माणं मणसा वि न पत्थप ॥

१८०

—उत्तरा०

पूयणा जनोशमी, माण-सम्माणं कामप ।
बहु पसवई पाव माया सल्ल च कुब्बइ ॥

—दशवै०

१८१

जस किञ्चि सिलीग च, जा य वदणं पूयणा ।
सल्लोवसि ज कामा, त विच परिजाणिया ॥

—सुनज्जाग

मान सम्मान

१७८

साधक को चाहिए कि दूसरे का पराभव—अग्रमान न करे, अग्रने को बड़ा न समझे, शास्त्र ज्ञान पाकर अभिमान न करे और ब्राह्मि, तप, बुद्धि आदि का भी अहंकार न करे ।

१७९

पूजा, अचना वन्दन, नमस्कार, श्रद्धि, सत्कार और सम्मान—इनको साधक मन से भी इच्छा न करे ।

१८०

पूजा प्रशंसा का कामना तथा मान सम्मान की लालसा रखने वाला साधक बहुत पाप करता है, माया एवं दम्भ का सेवन करता है ।

१८१

यश, कीर्ति, श्लाक, वन्दन, पूजन तथा मसार क समस्त काम भोग—विद्वान् साधक इन सब की आत्म-घातक समझ कर इनका त्याग करे ।

•

भिच्छु कीन ?

१८२

चत्वारि वमे मवा कमाए,

धुवजागी व हविज बुद्ध-वरण ।

अहण निपायन्त्य-रवण,

गिहि-जोम परिगडण जे स भिवन् ॥-दशव०

१८३

न आहमो न य रुमरो,

न लाममरो न मुएण मरो ।

मयासि सय्यासि विवन्त्यतो,

धम्म-सण्ण-रए जे न भिवन् ॥-दशवै

१८४

पवेण अ-ज्जय मडामुणी,

अप्पे तिअण्णं गवयइ पर पि ।

निकयम्म वज्जेज कुमील्लिग,

न यावि हामं कुहए जे स भिवन् ॥-दशवै०

भिक्षु कौन ?

१८२

जो सदा क्रोध, मान, माया और लोभ—इन चार कलशों का पारदाग करता है जो शानी पुरुषों के बचनों पर अल्प विश्वासी है जो चागी-गोता आदि किसी भी तरह का परिग्रह नहीं रखता, जो गृहस्थों से स्नेह-मूल नहीं जोड़ता, वही भिक्षु है

१८३

जो ज्ञाति का अभिमान नहीं करता, जो स्वयं का अभिमान नहीं करता, जो लाभ का अहकार नहीं रखता, जो पादिक्रम का गर्व नहीं करता, जो सभी तरह के अहंकार से विरत होकर केवल धर्मध्यान में ही रत रहता है, वही भिक्षु है।

१८४

जो महामुनि सद्धर्म का उद्देश्य करता है, स्वयं धर्म में स्थित होकर दूसरों को भी धर्म में स्थित करता है घर-गृहस्थी के बंधन से निकलकर सदा के लिए दुर्लभ निग को छोड़ देता है, किसी के साथ हँसा-मजाक नहीं करता, वही भिक्षु है।

१८५

हाथसदृश

पायसदृश,

बाणसदृश

सुवर्णदिप ।

अञ्जणरस

मुसमादित्रया,

सुत्तयं च विद्यायां ज्ञे स भिक्षु ॥-दशवै०

१८६ :

सम्पदिही

तया अनूटे,

अस्थि ह्यु नाय तत्र संज्ञमे य ।

तस्मा धुण्ड

पुराण-पाका,

मण-वद-काय मुसुतुडे ज्ञे स भिक्षु ॥-दशवै०

१८७

अभिभूय

काण्य

परिमहाई

समुद्धरे

जाद पहाठ

अप्यय ।

विदत्तु

बाई-भरणी

महामय,

तत्रे रण सामणिए ज्ञे स भिक्षु ॥-दशवै०

★

१८५

जो हाथ पोंद नाणी और इन्द्रियों का पूर्ण सक्रम रखता
जो अन्धकार चिन्तन में ही लु लु रहता है, जो अपने प्राण
को मनी मूर्ति समाहित रखता है जो सुखार्थ का जना है
वही भित्तु है ।

१८६

जो सम्पदशो है जो फल-य-मृत नहीं है जो शान-तप
और सक्रम का हृत् अद्बालु है जो मन-वचन-जन को पाप
की ओर से रोककर रखता है, जो तप क द्वारा पूर्व-सचित
पापा को नष्ट कर डालना है, वही भित्तु है ।

१८७

जो शरर से पीपरी—कटिनाइशो को धैय पूर्वक महन
कर महार-गत न अपना उदार कर लेना है, जो जन्म-मरण
को महा भयंकर समझकर मत्त अभशाचित तर में निरल
रहता है वही भित्तु है ।

★

वैराग्य

१८८

कन्मल तु पश्यात्, आशुपुत्री कथा इ उ ।
वीरा सोहिमशुभता, आयुषति मगुसगय ॥

—उत्तरा०

१८९

नोही उतुपभूत्स धम्मो गुद्धस्त चिद् इ ।
निवारणं परम काइ, धयन्ति य पात्रे ॥

—उत्तरा०

१९०

जन्म दुक्खं जरा दुक्खं, रोगा य मरणाणि य ।
अहं दुक्खा हु संसारो, जय कीमति जंतुरो ॥

—उत्तरा०

१९१

जायित्तु दुक्खं पत्तेय माय अणुमिच्छन्तं च
खलु वय सपेहाए, गणं आयाहि वंशि १'

—आचाराग

वैराग्य

१८८

इस पाप-कर्मों का वग चीथ होता है, और अन्तरामा
प्रमथा शुद्धि का प्राप्त होता जाता है, तब कहीं मनुष्य
जन्म मिलता है ।

१८९

सरल आत्मा शुद्ध होती है, और शुद्ध आत्मा में ही
धर्म ठहरता है । प्रत सिञ्चित अग्नि की तरह प्रदीप शुद्ध
साधक ही निर्वाण को प्राप्त करता है ।

१९०

जन्म का दुःख है, जरा-बुढ़ापे का दुःख है रोग और
मरण का दुःख है । अहो ! सारा समार दुःख-रूप ही है ।
यहाँ तब प्राणी दुःख की आग में बल रहे ह ।

१९१

परिणत । सुख और दुःख प्रत्येक प्राणी को सहन पड़ते
हैं, अब भी जावन की बड़ियों शेष हैं—इस बात का विचार
करके अरसर को पहचान । इस मत भूल ।

१६२

भागुमते अमारभि वाहि-रोगाण्य आलए ।
 बरा-भरण घर्षभि, गण वि न रानाई ॥

—उत्तरा०

१६३

अमासए सरीरभि, रं नारलभाम ।
 पद्धा पुरार चइयन्, पेय्यतुन्नुय-गन्निभे ॥

—उत्तरा०

१६४

चीरिण वेर रुव न रिज्जुमराय-भवचर्न ।
 जय तं मुज्जगि राय पेचथ नावबुज्जसि ॥

—उत्तरा०

: १६५

जो परिभाइ पर जण, रंलारे परिउत्तइ मई ।
 अदु हंभिणियाउ पाणिया, इतिउचाय मुणी थ माइ ॥

—सूत्ररत्नाम

१६२ -

मानव शरीर अमार है, आधि-ध्याधियों का घर है
वरा और मरण स प्रल है, अत में स्य भर भी इसमें रहना
नहीं चाहना ।

१६३

यह शरीर पानी के बुलबुल क समान स्य भंगु है ।
मले या पीछे एक दिन इस छोड़ना ही है । अत इसक
प्रति मेरी तनिक भी प्रीति—आसक्ति नहीं है ।

१६४

मनुष्य का जीवन और रूप-सौंदर्य विद्वली की चमक
की तरह चंचल है । राजन् । आश्चर्य है, फिर भी तुम इस
पर मुग्ध हो रहे हो । परलोक की ओर क्यों नहीं निहारते ?

१६५

जो मनुष्य दूसरे का तिरस्कार करता है, वह बिरकाल तक
अमार में परिभ्रमण करता है । पर निन्दापाप का कारण है,
यह सम्भ्र कर साधक अदभाव का पोषण नहीं करने ।

१६६

जण सिधा तेगु गो सिधा
इयमेव नायदुर्भति जै जया मोह-पाउटा ।'

—आचारग

१६७

जह हु मे तह अम्हे तुम्हे नि होदिहा जहा अम्हे ।
अम्पाहेइ पईत, पंदुअ-यत्त किल्लशाण ॥

—अनुबोगद्वार

१६८

जावनअमिआ पुरिमा सने ते दुक्ख-संभवा ।
लुपति बुभो भूण, मंसारमि अणुतण ॥

—उत्तरा०

१६९

जीविय नाभिहंसेआ, मरणं नो वि पथए ।
दुइओ वि न सज्जेआ, जीविए मरणे तहा ॥

—आचारग

१६६

तुम दिनभर सुख की आशा रखते हो, वस्तुतः वे सुख के कारण नहीं हैं। मोह से विरे हुए लोग इस बात को नहीं समझते।

१६७

पीला गन्ना खनीस पर पड़ता हुआ अपने साथी हरे पत्तों से कहता है—“आज बैस तुम हो एक दिन हम भी ऐसे ही य, और आन बैसे हम हैं, एक दिन तुम्हें भी ऐसा ही होना है।”

१६८

वितने भी अज्ञानी पुण्य हैं, वे सब दुःख के भागी हैं। मनु अमनु के भिन्न स शून्य वे इस अनन्त संसार में बार बार पीड़ित होते रहते हैं।

१६९

साधक न तो जीवन रखने की इच्छा करे और न शीघ्र मरना ही चाहे। जीवन तथा मरण किसी में भी आसक्ति न रहे।

२००

बीरेण वि मरिपञ्च, पाउरित्तेश वि अवसस मरिञ्च ।
 तम्हा अवसस मरिणो, वर खु धीरत्तणे मरिउ ॥
 —मरसु-समाधि

२०१

लाभालाभे सुं दुक्खे, बीविण मरण तदा ।
 समा निदा-पण्णामु तदा मायावमायञ्चो ॥
 —उत्तरा०



२००

धीर पुष्प का भी मरना है, और कायर पुष्प का भी अवश्य मरना है। जब मरण अनिवार्य है, तो धीर को प्रशस्त मौन से मरना ही बेहतर है।

२०१

सच्चा साधक लाम अनाम, मुल दु ख, निन्दा प्रशंसा और मान-अमान में सम रहता है।



क्षमा

२०२

सत्यस्त जीवरासिस्त, भावयो धम्मनिहिअचित्तो ।

सब्बं एवमावदत्ता, एवमामि सब्बस्म अहयं पि ॥

—पंच प्रतिव्रमण

२०३

मयस्त समणुसंघस्स भगवओ अचलिं करिअ सीने ।

मये एवमावदत्ता, एवमामि सब्बस्म अहयं पि ॥

—एवप्रतिक्रमण

२०४

आयसिय उवज्जाए, संस साहम्मिए कुल-गणे य ।

जे जं कइ कमाया सब्बं तिणिहेण एवमेमि ॥

—एवप्रतिक्रमण

२०५

एवमेमि सब्बजीवे सये जीवा एवमेतु मे ।

मेत्ती मे सब्बभूएणु वेरं मत्तं न कणइ ॥

*

—एवपातक्रमण

सुभा

२०२

धर्म में स्थिर चित्त होकर मैं सर्वात्मपूर्णक सब जीवों से अपने अपराधों की सुभा चाहता हूँ और अपनी ओर से मैं भी उनक अपराधों को सुभा करता हूँ ।

२०३

अभिनिन्द दोनो हाथ जोड़ कर समस्त पूरे भ्रमण सब से मैं अपने सब अपराधों का सुभा चाहता हूँ, और मैं मा उनक प्रति सुभा भाव करता हूँ ।

२०४

आचार्य उपाध्याय शिष्य साधर्मिक, कुल और गण, उनक ऊपर मैं जो भी कयाद भाव किये हों, उन सब दुराचरणों की मैं तन-मन-बचन से सुभा चाहता हूँ ।

२०५ :

मैं सब जीवों को सुभा करता हूँ । वे सब जीव भी मुझे सुभा करें । मेरी सब जीवों के साथ मित्रता है किमा क साथ भी मेरा वैर-विरोध नहीं है । *

मोक्ष

२०६ :

दहरे य पाण्य बुद्धे य पाण्य ते अत्तञ्चो पासद्द म रलोण
उब्बेद्द लागमिण्यं मइत्तं, बुद्धो पमरोसु परिव्वण्ण
—सूत्रकृतांग

२०७

‘जे अण्यण्यारामे, उ अण्यत्तदंघी ।’—आचार्यंग

२०८

‘अरइं आउहे ते मेहावि लणसि मुक्के ।’—आचार्यंग

२०९

‘आयाण्य निक्किदा सत्ताउब्बि ।’—आचार्यंग

मोक्ष

२०१

जो समार क सब प्राणियों को आमन्त्र देवता है, समार को अशाश्वत समझता है, और अप्रमत्त भाव से समय में लन रहता है, वही मोक्ष का अधिकारी है ।

२०१

जो साधक मोक्ष के अतिरिक्त कहीं रुचि नहीं रखता, वही अग्न भद्रा वाला माना गया है ।

२०८

जो साधक अमति का दूर करता है, वह क्षण भर में मुक्त हो जाता है ।

२०६

भागी कर्मों का आभ्रद रोकन वाला साधक पूर्व संचित कर्मों का भी क्षय कर देगा है ।

२१०

पच्छा वि ते पयाया, विष्व गच्छन्ति श्रमर भवणाइ ।
 चेमि पिश्या तत्रा सनमा य, सति अ बभचेरं च ॥
 —दशवे०

२११

नार्यं च दंमय्य चय चरित्त च सत्री तथा ।
 एम मग्नु त्त परगुत्ता, जिखेहि वरं दर्शगिहिं ॥
 —उत्तरा०

२१२ :

नाखेय्य आणइ भावे, दंमय्य व सद्दे ।
 चरित्तय निचिहाइ, तदेय परिमुज्जइ ॥
 —उत्तरा०

२१३

विगि च बम्मया हेउ वसे सचिगु गतिप ।
 मगीरं पाटव हिखा, उण्ड पकमइ दिस ॥—उत्तरा०

२१०

जो दफती हुई उग्र में भी सधम के मार्ग पर चल पड़ते हैं और तप, सधम जमा तथा ब्रह्मचर्य को प्रिय समझ कर उन्मत्त रमण करते हैं वे भी अमरत्व का प्राप्त हो जाते हैं

२११

सर्वार्थी ज्ञानियों ने ज्ञान, दर्शन चारित्र और तप का ही मोक्ष का माग बनलाया है ।

२१२

साधक ज्ञान स जीवन-सर्वों को ब्यानता है, दर्शन स उनका भजान करता है, चारित्र के द्वारा उन्हें ग्रहण करता है, और तप स परिशुद्ध होता है ।

२१३

कम-ब-ध के कारणों का हूँ हूँ—उनका छुट्टा करा, और फिर जमा आदि के द्वारा अक्षर मश का सचय करो । साधक पार्थिव शरीर को छोड़कर सद्गति प्राप्त करता है ।

२१४

नादस्यिस्स नाय नायेण विणा न हुति चरणगुणा ।
 अगुथिस्स नत्थि मोक्खा, नत्थि अमोक्खस्स निव्वाण ॥
 —उत्तर०

२१५

सुत्तु पि सुमहीर्यं किं काही चरण विप्रहोणस्स ।
 अधम्मं जट् पणिसा, दीरसयमहस्स कोडी वि ॥
 —विशेषावश्यक०

२१६

को हुक्ख पाविज्जा, कस्स य सुक्खेदिं विम्हओ हुञ्जा ।
 को या न लभिन्न सुक्ख, रागहोमा जइ न हुत्ता ॥
 —मरण-समाधि

२१७

विणयाहीया विज्जा,
 देति फलं इह परे व लोगम्मि ।—बृहत्कल्प भाष्य

२१४

भद्रा हीन को ज्ञान नहीं होता, ज्ञान हीन को आचरण नहीं होता, आचरण हीन को मोक्ष नहीं मिलता, और मोक्ष पाये बिना निर्वास—दुर्ग शान्ति नहीं मिलती ।

॥ २१५ ॥

आचारण-हीन पुरुष का देण शार्खों का ज्ञान भी कुछ लाभ नहीं पहुँचा सकता । क्या लालों बरोड़ा फलते हुए दावक अये क देखन में सहायक हा सकते हैं ?

२१६

यदि राग-द्वेष न हों, तो संसार में न कोई दुःख पाय और न कोई सुख पाकर विस्थित ही हो, प्रत्युत सब मुक्त हो जायें ।

२१७

विनय भाव से सीखा हुआ ज्ञान इस लोक और परलोक दोनों जगह फल लक्षी हाता दे ।

२१८

अथा संसरमुक्चिद्ध धन्मं पाठ अणुत्तरं ।
तथा धुण्णइ कम्मरथ, अणोहि कनुमं कइ ॥

—दशमै०

२१९

अथा ज्ञो निद भिस्सा सलेसि पण्डिअइ ।
तथा कम्मं स्वदिताणं मिद्धि गच्छइ नीरअो ॥

—दशमै०

२२०

अथा कम्मं स्वदिताणं, मिद्धि गच्छइ नीरअो ।
तथा लागमं धयथो, सिद्धो हवइ सासअो ॥

—दशमै०

ॐ

२१८

जब साधक उच्छृणु एवं अनुत्तर धम का रस्य करता है, तब आत्मा पर से अज्ञान-जानिमा-बन्ध कम-रव को भाङ देता है ।

२१९

जब मन वचन और शरीर के योगों का निरोध कर आत्मा शैलेयी अवस्था को पाती है—पूर्णतः स-दल-रहित हो जाती है तब कर्मा का स्रव कर मयथा मल-रहित होकर सिद्धि (मोक्ष) का प्राप्त होता है

२२०

जब आत्मा समस्त कर्मों को स्रव कर, मयथा मल-रहित होकर सिद्धि [मोक्ष] को पा लेती है, तब लोक का अग्रभाग पर स्थित होकर सदा के लिए सिद्ध हो जाता है ।

॥



कलापूर्ण
 छाया
 आकषक
 कथर
 पम्का
 जिल्द
 पृष्ठ ३५०
 मूल्य
 ४।)

ज्ञानोदय —

जैन-धर्म का दार्शनिक अहिंसा के सम्बन्ध में क्या है वह स्पष्ट करण इस पुस्तक में मन्नी प्रकार हो जाता है।

